पुस्तक समीक्षा

हृदय की टीस की सार्थक अभिव्यक्ति हैं ये कविताएँ

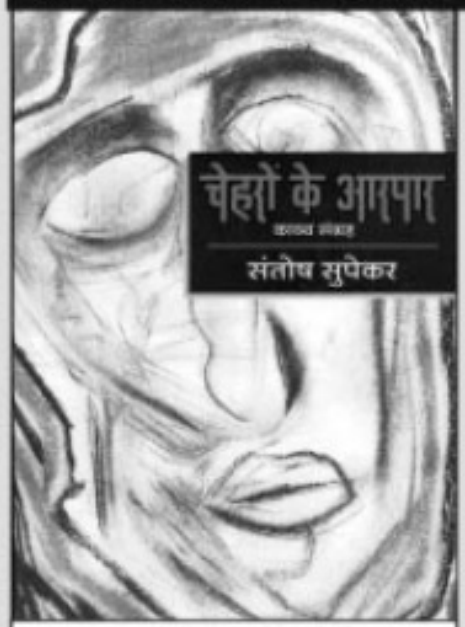

- पुस्तक का शीर्षक :- चेहरों के आरपार
- पुस्तक की विधा :- काव्य संग्रह
- लेखक :- संतोष सुपेकर
- पृष्ठ संख्या :- 123, मूल्य :- ₹180/-
- प्रकाशन :- सरल काव्यांजलि, उज्जैन

पश्चिम रेलवे, उज्जैन में लोको पायलट के पद पर कार्यरत अहिन्दी भाषी रचनाकार श्री संतोष सुपेकर के एकाधिक लघुकथा संग्रह प्रकाशित हैं और हिन्दी लघु कथाकार के रूप में स्थापित होने की प्रक्रिया में निरंतर अग्रसर भी हैं। मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा वर्ष 2011 के प्रादेशिक शीर्ष पुरस्कार से भी सम्मानित हो चुके हैं। अब मेरे सम्मुख श्री सुपेकर का काव्य संग्रह 'चेहरों के आर पार' है, जिसे पढ़कर नि:संदेह यह कहा जा सकता है कि ये रचनाएँ सम्भावनाओं से आपूरित हैं तथा समाज की विषमताओं का हृदय स्पर्शी वर्णन करती हैं और विसंगतियों पर मारक टिप्पणियाँ करने में भी सफल हैं। प्रस्तुत संग्रह की रचनाएँ मानवीय संवेदनाओं की निर्भीक अभिव्यक्ति हैं। 'एक बार आ जाओ नेताजी' जैसी कविता में देश-प्रेम का जज्बा दृष्टव्य है तो 'हफ्ता' कविता में हिन्दी के साधारण शब्द-हफ्ता, सुपारी के बदलते हुए स्वरूप पर कवि की चिन्ता उजागर हुई है।

साहित्य मानवीय संवेदना और समाज की विसंगतियों तथा विशिष्टताओं की अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ माध्यम है। परन्तु कविता में 'काव्यानन्द ब्रह्मानंद सहोदरा' की उक्ति तभी चरितार्थ होती है जब कविता में रस निष्पत्ति हो। इस दृष्टि से कविता में लय से विरक्त होकर एक रिक्तता का अहसास होता है। छन्द से मुक्त होना श्रेयस्कर हो सकता है, परन्तु लय से मुक्त होकर कविता कहीं अपनी पहचान खोती नजर आ रही है। भाई संतोष अधुनातन हिन्दी कविता के 'अ-कविता' आंदोलन से प्रभावित न होते हुए, कवि कर्म में प्रवृत्त हों यही अपेक्षा है। प्रस्तुत रचनाएँ आरम्भिक प्रयास हैं, पर इनमें हृदय की टीस को सार्थक अभिव्यक्ति देने में कवि सफल प्रतीत हो रहा है। 'गूंथना और गूंधना' में - नन्ही बेटी ने भी समय की नब्ज/पहचानते हुए/अपने बाल कटवाकर छोटे कर लिये हैं/ क्योंकि मां नहीं है अब/बाल गूंथने, चोटी गूंथने/से ज्यादा जरूरी हो गया है/आटा गूंधना/में कवि विवशताओं पर अपनी पैनी दृष्टि रखता है, तभी वह नन्ही लड़की के 'बाण्ड हेयर' को फैशन के वशीभूत होकर नहीं देखता है। शहर और शहरीकरण की तीव्रता के साथ हो रही वृद्धि से उपजी विसंगतियों पर कवि सजग है और लिखता है- 'कौन कहता है, जंगल अब नहीं रहे/जंगल अब भी बहुतायत में हैं और जंगलीपन तो/जंगलों से ज्यादा है/हाँ एक फर्क है इन जंगलों में बत्तियाँ जलती दिखती हैं/दस-बीस मंजिलों की उँचाईयों तक।' कवि की वेदना पिघलती हुई कहीं 'ओजोन गीत' लिखती है तो कहीं शहरी जीवन से ऊब कर 'फिर केवल अंगड़ाई' लेकर जाग उठता है और आंकड़ों के फैलाव पर - 'झूठ, जो कि आज कि/अभिव्यक्ति के साम्राज्य का भ्रष्ट निरंकुश, किन्तु सर्वमान्य शासक है' कविता में बेबाक टिप्पणी करता है। 'मुझे भी नफरत है-' में-'नफरत मुझे है चाकू छुरी और बंदूक की गोलियों से/जिनका दुरुपयोग निर्दोषि की जान ले लेता है पर नफरत का मेरा प्रतिशत/सबसे ज्यादा कुल्हाड़ी के प्रति है जो पेड़ काट डालती है' पंक्तियाँ पर्यावरण के प्रति जागरूकता को दर्शाती हैं। समाज में व्याप्त आपा धापी, भीड़, शोर गुल और भौतिकता का अंधानुकरण, स्वार्थ लोलुपता आदि विसंगतियाँ कवि संतोष के हृदय की टीस को उप्रेरित करती हैं। लघुकथा में किसी 'कथानक की डोर' से भी उन्मुक्त हो भावाभिव्यक्ति को प्रकट होने कि दिशा में प्रस्तुत काव्य संग्रह एक सार्थक पहल है। यह और बात है कि कविता का ककहरा जाने बिना भी कतिपय कविताएँ निस्रत हो जाती हैं और पाठकों को सहज ही भा जाती हैं। अस्तु ... संतोष सुपेकर निरंतर कवि-कर्म में अग्रसर होते रहें, मेरी समस्त शुभकामनाएँ।

✍ डॉ. हरीश प्रधान, अध्यक्ष, म.प्र. लेखक संघ, उज्जैन